Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

संस्कृत नाट्योत्पत्ति एवं प्रयोजन

डॉ. नलिनी तिलकर*

* सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत) शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – संस्कृत साहित्य में काव्य के दो भेद बताये गए हैं– दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य इनमें से अभिनयपूर्वक रंगमंच पर प्रदर्शित किए जाने से हमारे नेत्रों का विषय बनने वाले नाटकादि दृश्य काव्य कहलाते हैं। इस दृश्य काव्य को नाट्य, रूप एवं रूपक भी कहा जाता है, जो इसकी अलग विशेषताओं पर आधारित भिन्न–भिन्न नाम हैं। 'अवस्थानुकृतिर्नाट्म' अभिनय करने वाले पात्र (नट आदि) के द्वारा राम, दुष्यन्त आदि नायक तथा सीता, शकुन्तला आदि नायिकाओं की सुख–दुख, हर्ष–शोक आदि अवस्थाओं का, अपने अभिनय कौशल से अनुकरण किया जाना ही नाट्य कहलाता है। नाट्य का अर्थ है अभिनय। अत: अभिनेय होने के कारण नाटकादि को नाट्य कहा जाता है। 'रूपं दृश्यतयोच्यते' वह नाट्य ही अभिनय द्वारा रंगमंच पर प्रदर्शित होने से हमारे नेत्रों के लिए दर्शनीय होता है। इसीलिए इसी को रूप भी कहा जाता है। जैसे कि प्रकृति में नीला, पीला, लाल, हरा आदि पदार्थ (वस्तुएँ) नेत्रों से देखे जाने के कारण रूप है वैसे ही नाटकादि भी नेत्र ग्राह्यं होने के कारण रूप कहलाता है। 'रूपक तत्समारोपात्:' रंगमंच पर राम आदि का अभिनय करने वाले पात्र (नट) में सहृदय जन राम आदि का आरोप कर लेते हैं अर्थात उसे राम आदि ही समझने लगते हैं। नट पर राम आदि का आरोप किए जाने के कारण जो पहले नाट्य और रूप कहा गया है वही रूपक भी कहलाता है इस तरह नेत्रों का विषय बनने से जो काव्य दृश्य काव्य रूप है वही अभिनेयता के कारण नाट्य और रूपक भी है। रूपक शब्द की निष्पत्ति रूप धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से होती है। ये दोनों ही शब्द साहित्य में 'नाट्य' के द्योतक है। नाट्यशास्त्र में 'दशरूप' शब्द का प्रयोग नाट्य की विधाओं के अर्थ में हुआ है।

दशरूपककार आचार्य धनंजय नाट्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं – 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा है की नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, क्रिया, कुशलता आदि सभी का समन्वय रहता है वह कहते हैं कि इनमें से कुछ भी ऐसा नहीं है जो नाटक आदि में ना हो इसीलिए कहा गया है।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।। नाट्यशास्त्र 1/116

नाट्य दृश्य एवं श्रव्य काव्य होने के कारण मानव की बाह्य तथाआन्तरिक समस्त प्रकृतियों का अनुकरण ही है नाट्य अपने प्रेक्षकों को सभी प्रकार के दु:ख तथा क्लेश श्रम–शोक एवं खिन्नता से युक्त करके उनके हृदय को विश्रान्ति और आनन्द प्रदान करता है। इसके साथ लोकवृत्त में धर्माचरण करने का उपदेश देता है, जिसमें समस्त ज्ञान, समस्त शिष्य, समग्र विद्याए तथा समुची कला, योग कर्म आदि का समावेश हो वह नाट्यश है।

साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं। दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के द्वारा दर्शक किसी भी घटना या वस्तु का चाक्षुष ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु श्रव्य काव्य के द्वारा केवल श्रवण ही प्राप्त होता है। श्रव्य काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा इसी आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार रूप से होती है। जिसका अभिनय किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहते हैं 'दृश्यं तत्राभिनेयं'। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक संज्ञा से भी जाना जाता है।

संस्कृत साहित्यशास्त्रियों ने दृश्य और श्रव्य के रूप में दो वर्गों में रखा है। दृश्यकाव्य के दो भेद हैं रूपक तथा उपरूपक।रूपक के दस और उपरूपक के अठारह प्रकार होते हैं। रूपकों का एक प्रमुख भेद नाटक है। ये रूपक रसाश्रय होते हैं केवल भाव पर आश्रित नहीं रहते। इनके दस भेद किये गये हैं यथा–

अवस्थानुकृतिर्नाट्य रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम्।।
नाटकं सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम:ण्।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यंकेहामृगा इति।। दशरूपक 197–2

अर्थात् नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग ये नाट्य अर्थात् रूपक के दश भेद हैं।

नाटक की उत्पत्ति के विषय में सर्वाधिक प्राचीन मत हमें भरतमुनि के नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में उपलब्ध होता है। इस अध्याय का नाम 'नाट्ययोत्पत्ति' है। इसके अनुसार नाटक पंचम वेद है, जिसकी सृष्टि ब्रह्मा ने महेन्द्र सहित देवसमूह की प्रार्थना पर की:

महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तरू किल पितामह:।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यचयद्भवेत।।नाट्य शास्त्र 1।11

अर्थात इन्द्र जिनका मुखिया था ऐसे देवताओं द्वारा पितामह ब्रह्माजी से कहा गया कि 'हम ऐसा खेल अथवा खिलौना चाहते हैं जो देखने तथा सुनने दोनों के योग्य हो। यह सुनकर ब्रह्मा ने चारों वेदों का ध्यानकर ऋग्वेद से पाठ्यसामग्री, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रसों को ग्रहण करके यनाट्यवेद नामक पंचमवेद की सृष्टि की:

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयांरसानाथर्वणादपि।। नाट्य शास्त्र 1।17

वेदापवेदै: संबद्धो नाव्यवेदो महात्मना ।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना ।। नाट्य शास्त्र 1।18

इस प्रकार सब वेदों के ज्ञाता महात्मा भगवान श्री ब्रह्मा जी के द्वारा वेदों और उपवेदों से सम्बन्ध रखने वाला यह नाट्यवेद रचा गया। उपवेद चार हैंकृआयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद तथा स्थापत्यवेद। नाट्यवेद को उत्पन्न करके ब्रह्मा जी ने देवराज इन्द्र से कहा कि इसका अभिनय देवताओं से कराओ। जो देवता कार्यकुशल, पण्डित, वाक्पटु, तथा थकान को जीते हुए हों, उनको अभिनय का कार्य सोंपो। अर्थात अभिनेता के ये चार गुण हैकार्य कुशलता, पाण्डित्य, वाक्पटुता तथा थकान को जीतने की शक्ति। इन्द्र द्वारा देवताओं को अभिनय में असमर्थ बताने पर ब्रह्मा ने भरतमुनि के पुत्रों को इसकी शिक्षा देने के लिए कहा। ब्रह्माजी के कथानुसार इन्द्र के ध्वजोत्सव में नाट्यवेद सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ। इस अभिनय में देवों की विजय तथा दैत्यों का अपकर्ष प्रदर्शित हुआ, अत: उन्होंने विघ्न उपस्थित किया। इन विघ्नों से बचे रहने के लिए इन्द्र ने विश्वकर्मा से नाट्यगृह की रचना कराई। इसके उपरान्त ब्रह्मा ने दैत्यों को शान्त करने के लिए कहा कि नाट्यवेद देव और दैत्यों दोनों के लिए हैं तथा इसमें धर्म, क्रीड़ा, हास्य और युद्ध आदि सभी विषय ग्रहीत किये जा सकते हैं।

श्रंगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानका:।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्य रसा: स्मृता:।। साहित्य दर्पण-308

नाट्य का प्रयोजन:

दु:खार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम।
विश्रांतिजननं काले नाट्यमेतन्मयाकृतम।।नाट्य शास्त्र 1।114

अर्थात ब्रह्मा जी कहते हैं कि मेरे द्वारा रचा हुआ यह नाट्य दुरूख से पीड़ित, थकेमाँदे, शोक संतप्त लोगों के लिए उचित समय पर विश्राम देने वाला है।

धम्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्द्धनम ।
लोकोपदेश जननं नाट्यमेतद्भविष्यति ।।नाट्य शास्त्र 1।115

यह नाटक धर्म, यश और आयु बढ़ानेवाला, हितकारी, बुद्धिवर्धक तथा लोकोपदेश का जन्मदाता होगा। इस नाटक में समस्त शास्त्र, शिल्प एवं विविध प्रकार के कर्म एकत्र एवं सन्निविष्ट रहते हैं।

अहो नाट्यमिंद सम्यक त्वया सृष्टं महामते।
यशस्यं च शुभार्थ च पुण्यं बुद्धि विवर्द्धनम ।।भरतमुनि, ना.शा. 4।12

आचार्य भरतमुनि के अनुरोध पर पितामह ब्रह्म के आदेश से विश्वकर्मा द्वरा निर्मित नाट्यशाला में जब अमृतमन्थन नामक समवकार और त्रिपुरदाह नामक डिम का अभिनय हुआ (नगपति हिमालय, कैलाश पर नाट्यशाला थी) तो उसमें देवता तथा दानवों ने अपने भावों एवं कर्मों का स्वाभाविक एवं सजीव प्रदर्शन देखकर हार्दिक उल्लास प्रकट करते हुए कहा यहे महामते, आपके द्वारा विरचित यह नाट्यरचना अत्यन्त सुन्दर है। यह यश, कल्याण, पुण्य तथा बुद्धि का विवर्द्धन करने वाली है।

अत: भरतमुनि ने नाटक को एक व्यापक और समृद्ध कला के रूप में देखा है जो मानव जीवन को सुधारने और समाज को एकजुट करने में मदद करती है। नाटक को देखकर , सुनकर सभी प्रकार के रसों की अनुभूति की जा सकती है। रसास्वादन, मनोरञ्जन व नवीन चिन्तन के कारण ही नाटक की लोकप्रियता वृद्धि को प्राप्त हो रही है संस्कृत रूपक में कवि अपने विचारों और भावना को प्रस्तुत करता है जिससे पाठक एवं दर्शक को उसके गूढ़ अर्थ और संदेश का अनुभव हो सके। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में लोक कल्याणकारी संदेशों का विशेष महत्व है यह संदेश नाटक के माध्यम से समाज में सकारात्मक परिवर्तन करते हैं और मानव जीवन को सार्थक और समृद्ध बनाने में सहायक होते हैं नाटक जीवन के उद्देश्य की समझ प्रदान करता है और मानव को अपने जीवन के उद्देश्य को समझने और लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार संस्कृत रुपक एक साहित्यिक और दार्शनिक उपकरण हे जो हमें जीवन की गहराइयों को समझने में मदद करता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नाट्यशास्त्र,1/116
2. दशरूपक 197-2
3. नाट्यशास्त्र 1।11
4. नाट्यशास्त्र 1।17-18
5. साहित्य दर्पण-308
6. नाट्यशास्त्र 1।114-115
7. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र 4।12

****